पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
श्री नियमसार गाथा ३८
तारीख ०८-०४-१९९०, प्रवचन ४४८

उनमें एक समयसार और एक ये नियमसार ये द्रव्यानुयोग की पराकाष्ठा के शास्त्र हैं। जिसमें मुख्यपने दृष्टि का विषय देने में आया है। अनंतकाल से जीव ने ज्ञान के विषयभूत शास्त्रों का अवलंबन किया; दृष्टि प्राप्त होने के बाद जानने के जो विषय थे उनको मुख्य करके, और दृष्टि के विषयभूत जो तत्त्व और उनको बतानेवाले जो शास्त्र, उनको गौण करके (किया), बाकी सब शास्त्र- धवल, महाधवल आदि हजारों शास्त्र हैं, परंतु वो दृष्टि प्राप्त होने के बाद उन्हें ज्ञान का ज्ञेय कहते हैं। दृष्टि प्राप्त होने से पहले परपदार्थ को जानने में रुक जाये, पर्याय के भेदों को जानने में रुके, तो उसको मिथ्यात्व सहित का ज्ञान होता है परंतु मिथ्यात्व नहीं जाता। पंडित होता है परंतु ज्ञानी नहीं होता।

ज्ञानी होने के लिए तो, दृष्टि निर्मल होने के लिए तो, दृष्टि का विषय जो शुद्धात्मा अनादि-अनंत एकरूप है, जिसमें पर्यायमात्र का अभाव है, ऐसा एक सामान्यतत्त्व है। जो शुद्धात्मा, जो जीवतत्त्व सामान्य जिसमें ज्ञान है, दर्शन है, सुख है, वीर्य है, प्रभुत्व, विभुत्व, अनंत-अनंत-अनंत शक्तिओं से विराजमान परमात्मा अंदर में विराजमान है, विद्यमान है अभी, अभी हाजराहजूर है। जैसे अभी स्वर्ग के देव तो आते नहीं पंचमकाल में, परंतु यह (मेरा आत्मा) देवों का भी देव प्रगट हाजराहजूर है। परंतु उसको जानने के लोभ में मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है। परंतु आदर करने योग्य भाव एक आत्मा ही है, वह ही आश्रय करने योग्य है, उसका लक्ष करने योग्य है, वही एक उपादेय तत्त्व है; बाकी सब हेय हैं। ऐसा जहाँ तक भेदज्ञान न हो तब तक दृष्टि निर्मल नहीं होती और दृष्टि निर्मल न हो तब तक मोक्षमार्ग के जो दो अवयव हैं, वो भी प्रगट हो सकते नहीं।

मोक्षमार्ग का सूत्र है **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थसूत्र, अध्याय १ गाथा १) जिसमें प्रथम ही शब्द है - सम्यग्दर्शन है। यदि सम्यग्दर्शन है तो ज्ञान और चारित्र सम्यक् कहलाते हैं परंतु यदि सम्यग्दर्शन नहीं है तो यह ज्ञान भी अज्ञान है और यह चारित्र भी कुचारित्र है, सम्यक्चारित्र नहीं है। ऐसी अपूर्व बात कुंदकुंदाचार्य भगवान की देन है यह। आहाहा! भगवान महावीर के निर्वाण के बाद; कल जन्म हुआ था, आज निर्वाण हुआ, ऐसा समझो; तो निर्वाण के बाद के पाँच सौ वर्ष बाद कुंदकंदाचार्य भगवान का इस भूमि पर जन्म हुआ। तब तो छोटी उम्र में उन्होंने दीक्षा ली, पूर्व के संस्कार थे। इतिहास उनका ऐसा है (कि) कम उम्र में दीक्षा लेने के बाद उन्हें छोटी उम्र में आचार्य पद प्राप्त हुआ। साधु-संघ ने उन्हें आचार्य पद्वी प्रदान की, ऐसे समर्थ आचार्य हुए।

उनके काल में, भगवान महावीर के निर्वाण के बाद, भगवान महावीर के समकालीन उस समय भी बौद्ध धर्म निकल गया था, जो पर्याय को ही आत्मा मानते हैं। आत्मा जन्म लेता है और आत्मा मर जाता है, बस! पर्याय है उतना ही आत्मा है - ऐसा माननेवाला क्षणिकवादी ऐसा एक धर्म निकल चुका था भगवान महावीर के काल में। और एक सांख्यमत तो प्रवर्तता ही था, जिस सांख्यमत की नींव

डाली थी मारिची के जीव ने। वो महावीर का (ही) जीव था, ऋषभदेव भगवान के समय में। ऐसा सांख्यमत भी था और बौद्धमत भी था, ये दो तो थे भगवान महावीर के काल में। लेकिन कुंदकुंदाचार्य भगवान के काल में एक श्वेताम्बर मत भी निकल चुका था। उनके काल में उन्होंने देखा कि घोर अँधेरा है। मोक्षमार्ग का बहुत लोप होता हुआ दिखता था। स्वयं को आत्मज्ञान था, आत्मभान था, निरंतर अतींद्रिय आनंद का भोजन करनेवाले थे। लेकिन (उनका) द्रव्य ही कोई इस प्रकार का था कि उनको करुणा आ गयी, बहुत ज़्यादा करुणा आ गयी कि यह भारत के जीव सत्य के उपदेश बिना मोक्ष के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

अभी इस काल में केवली नहीं हैं, श्रुतकेवली भी नहीं हैं, बारह अंगधारी भी गए, दो सौ ढाई सौ वर्ष में तो बारह अंग (धारियों का) भी विच्छेद हो गया, उनके काल में। आहाहा! तब उन्हें तीर्थंकर भगवान का विरह महसूस हुआ। उसमें कोई घटना ऐसी घटित हो गयी, अपनी लब्धि से या ऊपर से देव आकर के उनको वहाँ महाविदेहक्षेत्र में ले गए। अभी सीमंधर भगवान विराजते हैं। उस समय (आचार्य कुंदकुंद) वहाँ पधारें, ८ दिन रहे। चक्रवर्ती ने प्रश्न किया कि ये कौन हैं? दिव्यध्वनि में आया कि ये भारत के समर्थ आचार्य कुंदकुंद हैं, और मूल धर्म की प्रभावना उनके निमित्त से भारत में होगी। जिस वक्त ऐसी वाणी खिरी उस वक्त, अभी भारत में आए हुए कुछ जीव वहाँ से आए हुए हैं, महाविदेहक्षेत्र से यहाँ आए हुए जीव हैं, वो भी वहाँ थे। उन्होंने भी स्वयं देखा है कि ये कुंदकुंदाचार्य हैं, ऐसा कोई चमत्कार हो गया।

८ दिन वहाँ रहे, दिव्यध्वनि भी साक्षात् सुनी और श्रुतकेवलियों के पास खुलासा भी बहुत तत्त्व का किया। तत्त्व का खुलासा तो था, तत्त्ववेदी तो थे, विशिष्ट प्रकार से ज्ञान का उघाड़ इतना हो गया कि वहाँ से आकर (शास्त्र लिखे)। मद्रास से अस्सी मील दूर एक पोन्नूर-हिल है, वह उनकी तपोभूमि है, वहाँ उनके पाद-चरण हैं, उनके जैसे बड़े चरण अभी कहीं भी नहीं हैं, इतने बड़े चरण हैं। आहाहा! उसके ऊपर एक पेड़ था और उस पेड़ से फूल खिरते थे उनके ऊपर। आहाहा! उस पेड़ से फूल खिरते थे ये मैंने भी देखा है। बाद में वह पेड़ नष्ट हो गया, अभी फूल खिरते नहीं हैं। चम्पा का पेड़ था। फिर आकर उन्होंने शास्त्र लिखे - समयसार, नियमसार, पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, अष्टपाहुड़ आदि चौंसठ पाहुड़ लिखे थे लेकिन अभी मात्र थोड़े उपलब्ध हैं।

उन द्रव्यानुयोग के शास्त्रों में, द्रव्यानुयोग - जिसमें द्रव्य सामान्य, उपादेयरूप तत्त्व की व्याख्या विशेष होती है - उसको द्रव्यानुयोग कहने में आता है। चरणानुयोग साधक की व्यवहार चारित्र की मुख्यता से लिखा गया है, वो चरणानुयोग है। करणानुयोग - जीव के सूक्ष्म परिणाम और उसमें किस प्रकार के कर्म के निमित्त होते हैं, ऐसा निमित्त-नैमित्तिक बतानेवाले सूक्ष्म परिणाम वह करणानुयोग कहलाता है। प्रथमानुयोग - जो महापुरुष हो गये उनके जीवन-चारित्र के जैसे, वह पढ़कर भी उसे प्रेरणा हो की मुझे भी ऐसा होना है! चारों अनुयोग उसमें भी द्रव्यानुयोग उत्कृष्ट है, भेदज्ञान की भी पराकाष्ठा जिसमें लिखी हुई है। जिसमें शुद्धात्मा का स्वरूप शुद्धरूप से निरुपण किया है, मिलावट के बिना, ऐसा द्रव्यानुयोग का यह नियमसार शास्त्र है।

समयसार लिखने के बाद नियमसार शास्त्र लिखा गया है। स्वयं लिखते हैं कि मैं **निजभावना**

के लिए यह **नियमसार शास्त्र** की रचना करता हूँ (नियमसार गाथा १८७)। समयसार तो अप्रतिबुद्ध अज्ञानी जीवों पर करुणा आयी और नवतत्त्वों का विस्तार उसमें किया, उसमें तो बहुत जीवों को प्राप्ति होगी। यह तो अपने लिए लिखा है। अपनी भावना के लिए जो शास्त्र लिखा है, ये दूसरों को समझाने से ज़्यादा अपनी भावना का शास्त्र कोई अपेक्षा से बहुत सूक्ष्म कहने में आया है। उसमें पर का लक्ष नहीं है, उसमें दूसरों को समझाने का आशय नहीं है, परंतु स्वयं के तत्त्व को स्वयं घूँटते हैं, ऐसा। मेरी भावना के लिए मैंने इस शास्त्र की रचना की है, ये स्वयं लिख गए हैं।

इस नियमसार शास्त्र में यह एक शुद्धभाव अधिकार ऊँचे में ऊँचा है और एक पाँच रतन की गाथा है - परमार्थ प्रतिक्रमण - ये (दोनों) सार है, सार। जैसे गन्ना होता है बड़ा लंबा हो और उसका मूल (गाँठ) और उसका आगे का भाग निकाल दें तो बीच की जो कतली होती है, वह एकदम मीठास से भरी हुई; पूरे-पूरा रस से भरपूर, उसमें कषायला स्वाद भी नहीं होता और दूसरा स्वाद भी नहीं होता, सीधी कतली (मिठास) उसकी; इस प्रकार पूरे नियमसार में एक यह कतली है - शुद्धभाव अधिकार। शुद्धभाव अधिकार यानि शुद्धात्मा। सब आत्मा शुद्ध ही हैं, तीनों काल शुद्ध हैं। भूतकाल में अशुद्ध हुआ नहीं, वर्तमान काल में, मिथ्यात्व की अवस्था के काल में, अशुद्ध पर्याय के सद्भाव में; शुद्धात्मा ऐसा का ऐसा विराजमान है, सिद्ध समान! किंचित् मात्र मैला हुआ नहीं, अशुद्ध हुआ नहीं। आहाहा! यह तो पर्याय का लक्ष छोड़े और द्रव्य का लक्ष करे उसको साक्षात् खबर पड़े - ऐसी बात है।

जैसे ये नियमसार शास्त्र अपनी भावना के अर्थ लिखने में आया है, वैसे हमारा आवागमन हिम्मतनगर में, हमारे स्वाध्याय के लिए हम आयें है। हमारा कोई ऐसा आशय नहीं कि हम किसी को समझा दें, व्याख्यान दें, मगर यहाँ हैं तो सामान्य तरीके से ऐसा भाव भी आता है। तो (एक) घंटा मैं वाँचू, (एक) घंटा बहन वाँचें; सब बातें हमारे राजकोट में हो गयी हैं और मीठाभाई को कहा था कि 'देखो भाई! हम तो हमारे स्वाध्याय के लिए आते हैं। आपका किसी भी प्रकार आग्रह होगा तो हम चले जायेंगे।' (तो मीठाभाई ने कहा) 'आपकी अनुकूलता हो तो आप दो घंटा देना और न दे सकें तो भी कुछ नहीं, लेकिन आप आओ'। इसलिए हम भी हमारे हित के लिए स्वाध्याय के लिए, घोलन के लिए यहाँ (आयें है)। यहाँ लायक जीव है, वातावरण, मंडल, मुमुक्षु-मंडल, वातावरण बहुत अच्छा है, हमने कई बार आकर के देखा है, इसलिए हमें यहाँ आने का भाव होता है।

मुमुक्षु: साहब! आपकी हाज़िरी में अभी भी हमको तत्त्व स्फुरायमान रहता है, आपकी हाज़िरी में ही। उसका भी हमको गौरव है।

पू. लालचंदभाई: अर्थात् किसी दूसरी अपेक्षा से हम आए नहीं हैं। बाहर से भाई आना चाहें अपने हित के लिए, तो ख़ुशी से पधारें, हमें कोई परेशानी नहीं है, हमारी सबको (आने की) छुट्टी है। हज़ारों लाखों लोग भले आयें कोई सवाल नहीं है। परंतु हम तो हमारे स्वाध्याय के लिए (आए हैं), दूसरा कोई आशय हमारा नहीं है।

इतना प्रभावना का भाव आ जाता है कि ये गुरुदेव ने ४५ साल मेहनत करके, नादुरस्त स्वास्थ्य होने पर भी ४५ साल तक जो बोध दिया है, यह बोध तत्काल - त्वरा से नष्ट न हो और लम्बे समय (तक) थोड़ा चले - ये भावना से वाणी खिरती है।

मुमुक्षु: हाँ जी! पंचम आरे (काल) के अंत तक चलेगा इसकी नींव आपने डाल दी।

पू. लालचंदभाई: उनका कहा हुआ तत्त्व ही हम कहते हैं। हमारे घर की कोई बात आज तक हमने की नहीं। बाद में हम कहे और फिर कोई न माने, न (अच्छी) लगे तो वह तो उसकी योग्यता है। बाद में वही जीव जब (प्रवचन रत्नाकर के) ग्यारह भाग पढ़ता है, तब (वही जीव) अभी कहता है हो, कि भले हमने पूर्व में, लालूभाई की टीका पूर्व हमने करते थे लेकिन ये तो गुरुदेव ने कहा है, देखो इस भाग में यह लिखा है, देखो इस भाग में ऐसा, स्वयं कबूल करते हैं। ये तो जो विरोध करनेवाले हों न, वे भी अगर सज्जन हों न, सज्जन आहाहा! यह तो गुरुदेव कह गए थे वो ही लालूभाई कहते हैं, संध्याबेन कहती हैं, कोई घर का तो कहते नहीं हैं, ऐसा यकीन हो जाये। आहाहा! हमें तो उनसे मिला है और हम हमारा घोलन मौन से करते हैं और इस वाणी द्वारा भी हमारा स्वाध्याय करते हैं। दूसरे सुने तो भले सुने और प्राप्त कर ले।

अपूर्व शास्त्र, अपूर्व अधिकार! शास्त्र भी अपूर्व और शुद्धभाव भी अपूर्व है। जैसे समयसार का अजीव अधिकार है, समयसार का जीव और अजीव अधिकार है। समयसार के जीव अधिकार अस्ति से कहने में आया है जीव का स्वरूप, जीव का स्वरूप कहने में आया ३८ गाथा तक, और बाद में ३९ गाथा से ६८ गाथा तक जीव का ही स्वरूप कहने में आया लेकिन नास्ति से। एक विधि से - अस्ति से और दूसरा अधिकार है नास्ति से। ऐसा अजीव अधिकार है कि ये सब अजीव हैं, अजीव हैं, अजीव हैं, अजीव हैं। यह ही बात इस शुद्धभाव अधिकार में है कि जीव में यह नहीं, जीव में यह नहीं, जीव में यह नहीं। ऐसा ही इसका अधिकार है। अजीव अधिकार भी ऊँचा है।

अजीव में जीवपने की भ्रांति रह जाती हो, तो जो अजीव को जाने, अजीव को (यदि) अजीवपने जाने तो जीव की भ्रांति निकल जाती है। अजीव को जीव माना है। अनंतकाल से देह को जीव मानता है, कर्म को जीव मानता है, राग को जीव मानता है, पर्याय को जीव मानता है; परद्रव्य को जीव मानता है। पर्याय यानि परद्रव्य। आहाहा!

अलौकिक! महाभाग्य हो तो कुंदकुंद की वाणी कान पर आती है। आहाहा! सब तुझे मिलेगा मगर जिनेंद्र भगवान की वाणी, कुंदकुंद की वाणी, उसका योग मिलना वो भी चक्रवर्ती के पुण्य से भी पुण्य बढ़ जाए तब यह वाणी कान पर आती है, जो कि परम हित में निमित्त होती है। आहाहा! भव का अंत आ जाए ऐसी वाणी है। कुंदकुंद की वाणी यानि ख़तम। आहाहा!

भगवान महावीर के बाद अँधेरा हो गया था। पाँच सौ साल के बाद उदय हुआ जैसे सूर्य का उदय होता है, वैसे कुंदकुंद भगवान का उदय हुआ। अपने लिए उदय हुआ, अपने लिए (वाणी) वह लेकर आए और हम (सीधे) समझ न सकें इसके लिए गुरुदेव को यहाँ भेजा सीमन्धर भगवान ने कि 'जाओ! वहाँ कुंदकुंद की वाणी का धर्म फैलाओ' (ऐसा) वाणी में से वहाँ आया। सुननेवाले थे वहाँ, (उनमें से) एक से ज़्यादा, एक से ज़्यादा जीव (महाविदेह से) अभी यहाँ आए हैं आहाहा! श्रद्धा न आवे, क्या हो? एक से ज़्यादा जीव.. कुंदकुंद भगवान वहाँ पधारे थे तब गुरुदेव वहाँ थे, स्वयं राजकुमार थे। आहाहा! और दिव्यध्वनि में आया। चक्रवर्ती ने पूछा कि इस वक्त इस सभा में कोई भावी तीर्थंकर होनेवाला जीव है कि नहीं? तब वाणी में आया राजकुमार सूर्यकीर्ति नामक तीर्थंकर होंगे। यह शत-

प्रतिशत सत्य बात है। आहाहा! मानो या न मानो ये तो सत्य ही है।

ऐसे गुरुदेव यहाँ पधारे और उन्होंने समयसार का इतना विस्तार किया तो हम समझ सके। नहीं तो समयसार और उसकी संस्कृत टीका हम समझ नहीं सकते थे। अठारह सौ वर्ष तक तो उसका अनुवाद नहीं हुआ। यह दो सौ वर्ष में ही उसका अनुवाद हुआ, हिंदी में, जयचंद पंडित ने जयपुर में अनुवाद किया, उनका भी हम पर उपकार है। और इसका अनुवाद अपने पंडित हिम्मतभाई ने गुजराती में किया, उनका भी गुजराती समाज ऊपर उपकार है, अपने ऊपर, क्योंकि जितना मातृभाषा में जो भावभासन होता है, वह अन्य भाषाओं में उतना भावभासन नहीं होता। जैसे हिंदीभाषी, भाई कहते हैं कि हिंदी बोलो, हिंदी बोलो, उसका अर्थ क्या? कि गुजराती में ख्याल नहीं आता है मगर हिंदी में ज़्यादा ख्याल में आता है। यह तो स्वाभाविक है। वो तो स्वाभाविक (बात है की) मातृभाषा में ज़्यादा ख्याल आ जाता है।

तो इसमें ये शुद्धभाव अधिकार बढ़िया से बढ़िया अधिकार है। आहाहा! सम्यग्दर्शन का हेतु हो जाए, आहाहा! या तो सम्यग्दर्शन की पात्रता बन जाए, दो भाव इसमें हैं। आहाहा! क्या कहा? या तो प्रत्यक्ष सम्यग्दर्शन होता है, इसमें निमित्त हो; और या कोई अपूर्व निर्णय आ जाए उसके बाद में सम्यग्दर्शन होता है। इन दोनों भाव में निमित्त होनेवाला यह एक शास्त्र और उसमें भी यह शुद्धभाव अधिकार है।

मैं मुंबई जब कुछ वर्षों के लिए गया; उसके बाद मेरा मुंबई छोड़कर राजकोट (वापस) आने का हुआ; तब यह शुद्धभाव अधिकार लिया था वहाँ मुंबई में। इस शुद्धभाव अधिकार के दस व्याख्यान (हुए, उसकी) टेप हो गयी है। शांतिभाई झवेरी का पुत्र तत्त्व-रसिक है, पंकज, उसने दस टेप सम्भाल कर रखी है। हीरे का व्यापारी है। (पंकज:) 'मैं हीरे की दरकार नहीं करता, इतनी ये टेप तिजोरी में संभालकर रखी है। यह टेप मैं किसी को देता नहीं (हूँ)'। कोई कहे कि सुनने के लिए (दो, तो) (पंकज:) 'नहीं। मैं कॉपी करके दे सकता हूँ। परंतु यह पूँजी मेरी है'। इतना तो तिजोरी में रखकर सम्हाल करता है, बोलो। ऐसा अधिकार! कोई एक क्षण था, एक क्षण था। आहाहा! इस शब्द का कर्ता आत्मा तो है नहीं, जिस काल में जो पर्याय होने योग्य हो शब्द की, वह होती है। भाव भी होने योग्य होता है, उसका भी कर्ता नहीं तो शब्द की पर्याय का तो आत्मा कहाँ से कर्ता होवे?

(ऐसा) अपूर्व अधिकार है! पूरा अधिकार बहुत ऊँचा है, इसका बहुमान करना। मैं जानता हूँ - यह निकाल देना मन में से। कुछ जानता नहीं तो यह जानने में आएगा और किसी भी प्रकार से कोने में व्यवहार का पक्ष हो तो अभी कुछ समय के लिए उसको deposit (जमा) रखना, बाहर में। आहाहा! पीछे ठीक लगे तो फेंक देना समुद्र में, बाद में। आहाहा! परंतु अभी तो आप deposit रखना अपनी मान्यता को। आहाहा! (अपनी) कल्पना को deposit रखना कि शुभभाव करते-करते धर्म होता है और ऐसा होता है और ऐसा होता है और पर्याय सहित ही द्रव्य होता है और रहित नहीं होता - ये सब कल्पनायें छोड़ देना।

यह कुंदकुंद की वाणी है, यह साक्षात् तीर्थंकर भगवान की वाणी है, सीमंधर भगवान की वाणी है इसका बहुमान करना। जो बहुमान करेगा उसका भी काम होगा। आत्मा का बहुमान होगा तो तो

साक्षात् अभी काम हो जाएगा। परंतु जिसको इस कुंदकुंद भगवान की वाणी का बहुमान आएगा, वो तो पात्र जीव है।

यह अधिकार अब हम शुरू करते हैं आहाहा! प्रथम तो जो हमें बोध देते हैं उनका उपकार हमें मानना चाहिए। सज्जन उपकार को भूलता नहीं। आहाहा! तीर्थंकर भगवान की वाणी, गणधर, कुंदकुंद भगवान और गुरुदेव तक सभी हमारे उपकारी हैं आहाहा! कोई प्रत्यक्ष उपकारी, कोई परोक्ष उपकारी। कोई इस भव में उपकारी, कोई पूर्व भव में उपकारी। आहाहा! ऐसी परंपरा (चालू है)। आत्मा तो अनादि का है न? आहाहा! आज का कहाँ है?

यहाँ ३८ गाथा लेते हैं। **अब शुद्धभाव अधिकार कहा जाता है।** शुद्धभाव यानि शुद्धात्मा। आत्मा तीनोंकाल शुद्ध है। कभी अशुद्ध हुआ ही नहीं। पहले अशुद्ध था और अभी शुद्ध हुआ है - ऐसा नहीं है। परिणाम में अशुद्धता होने पर भी, पानी की मलिन पर्याय होने पर भी, पानी का जो मूल स्वभाव है, जल का, वो तो स्वच्छ ही है। पचास प्रतिशत मलिन और पचास प्रतिशत स्वच्छ - ऐसा नहीं है। पूरे सौ प्रतिशत पानी का जो मूलस्वभाव जल का है वो स्वच्छ ही है और पानी की, जल की जो एक समय की पर्याय मिट्टी के संग से उत्पन्न हुई योग्यतानुसार, वो भी एक समय के लिए है, दूसरे समय में वो भी निर्मल हो जाती है। ऐसी मलिन पर्याय के सद्भाव में भी पानी, जल, नीर स्वच्छ-स्वच्छ बेहद स्वच्छ होता है।

ऐसे भगवान आत्मा अनादिकाल से अपने आत्मा को भूलकर, देह मेरा, कुटुम्ब मेरा, लड़का मेरा, ये मेरा, राग मेरा। भले मेरा मेरा करे परिणाम अशुद्ध हो गया, भले अशुद्ध हो गया, चिंता मत कर। तू परिणाम की चिंता छोड़ दे, परिणाम तेरे में है ही नहीं है। आहाहा! जो तेरे में नहीं है उसकी चिंता तू क्यों करता है? और जो तेरे में हैं उसकी तू फ़िकर कर कि मैं क्या हूँ। आहाहा! अपूर्व अधिकार है।

परिणाम की चिंता करता है, परिणाम को देखो भाई, परिणाम को (देखो)। आहाहा! परिणाम को देखने से, बार-बार देखने से मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है! आहाहा! मिथ्यात्व उत्पन्न तो होता ही है, मगर बार-बार देखने से मिथ्यात्व दृढ़ हो जाता है! आहाहा! और परिणाम को गौण करके, परिणाम की चिंता छोड़कर के, परिणाम को ज्ञान में ज्ञेय बनाना छोड़कर करके अपने मानसिकज्ञान में, आत्मिकज्ञान तो बाद में होता है, मानसिकज्ञान में (ऐसा ले कि) मेरा आत्मा तो शुद्ध ही है न। मैं तो परमात्मा हूँ न? अभी परमात्मा हूँ। मैं कृत्कृत्य हूँ। करने का तो प्रश्न है नहीं, मेरे में नहीं है। आहाहा! मैं तो अभी शुद्ध परमात्मा हूँ। ऐसे बार-बार द्रव्य स्वभाव का विचार करने से मिथ्यात्व गलता है और अनुभव से टल जाता है। आहाहा! और इधर अनुभव होने के बाद तू पर्याय में देख! देख! मिथ्यात्व कहाँ गया? मिथ्यात्व पर्याय में दिखाई ही नहीं देता है। धुआँ है ना धुआँ, धुआँ थोड़ा आता है अग्नि में, थोड़े देर के बाद धुआँ कहाँ गया? धुआँ तो दिखता नहीं है, गुम हो गया। ऐसे मिथ्यात्व के परिणाम, अशुद्धपरिणाम, द्रव्य पर दृष्टि देने के बाद पर्याय को देख, तो सम्यग्दर्शन है - ऐसा ज्ञान में ज्ञेय हो जाएगा। मिथ्यात्व ज्ञान का ज्ञेय नहीं होगा। राग ज्ञेय बनना छूट गया, परमात्मा उपादेयभूत ज्ञेय बन गया आहाहा! तो पर्याय को देखता है तो पर्याय भी निर्मल है। द्रव्य निर्मल और पर्याय भी निर्मल, द्रव्य शुद्ध

और पर्याय भी शुद्ध, **कारणतत्त्व** शुद्ध **और कार्यतत्त्व** भी **शुद्ध है** (नियमसार कलश ७२); ऐसा ज्ञानी बनने के बाद दोनों तत्त्व शुद्ध दिखाई देते हैं। आहाहा!

ऐसा अपूर्व अधिकार है। जितनी भी प्रशंसा करें उतनी कम है। ओहोहो! शब्दों से प्रशंसा हो सकती नहीं है, वो तो भाव से होती है। आहाहा! ये शुद्धभाव अधिकार बढ़िया से बढ़िया अधिकार है।

जीवादिबहित्तच्चं हेयमुवादेयमप्पणो अप्पा।
कम्मोपाधिसमुब्भवगुणपज्जाएहिं वदिरित्तो ॥३८॥

साथ में बोलो!

है हेय सब बहितत्त्व ये जीवादि, आत्मा ग्राह्य है ।
अरु कर्मसे उत्पन्न गुणपर्यायसे वह बाह्य है ॥३८॥

ओहोहो! समर्थ आचार्य के सिवा कौन कह सके? ..

मूल गाथा (**अन्वयार्थ**)- **जीवादि** जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष ये जीवादि सात तत्त्व, पुण्य-पाप मिला दो तो नौ पदार्थ हो जाते हैं। मगर इधर सात तत्त्व की बात करते हैं।

जीवादि बाह्यतत्त्व यानि शुद्धात्मा से बाहर हैं, शुद्धात्मा में सात तत्त्वों का प्रवेश नहीं है। मोक्ष की पर्याय का जहाँ प्रवेश नहीं है, तो मिथ्यात्व का प्रवेश तो कहाँ से आ जावे? स्वजाति का परिणाम भी अंदर में प्रवेश नहीं कर सकता है तो विजाति का परिणाम का तो अंदर में प्रवेश होता ही नहीं है। बाह्यतत्त्व है, बहिर्तत्त्व है, बाहर रहता है; शुद्धात्मा में अंदर में वो परिणाम आता नहीं है; नित्य में अनित्य पर्याय अंदर में आती नहीं है और कर्म-सापेक्ष जो परिणाम है, वह कर्म-निरपेक्ष परमात्मा के स्वभाव के अंदर आ सकती नहीं है।

शांति से विचारने जैसी बात है। एक था राजा और एक थी रानी - ऐसा नहीं है। थोड़ा शांति से अपने हित के लिए, एकाग्रचित्त से स्वाध्याय करने से बड़ा लाभ होगा। आहाहा! एक घंटे के लिए तो सब बाहर का विचार बंद करना चाहिए, इतनी तो मानसिक एकाग्रता चाहिए, मानसिक एकाग्रता। आत्मिक एकाग्रता तो बाद में आती है। कोई दुकान का विचार, घर का विचार, कोई बीमार हो - कोई विचार नहीं आवे। आहाहा! कि इधर से जाने के बाद ७ध२।९।। (बकाया ऋणों की वसूली) करूँगा और बेंक में जाना, बिल्कुल विचार मत करना। केवल आत्मा के समीप रहकर आत्मा का विचार आये कि कुंदकुंदाचार्य भगवान मेरे स्वरूप का वर्णन करते हैं, मेरा स्वरूप कैसा है (यह) समझने के लिए मैं इधर स्वाध्याय भवन में आया हूँ। बस! एक घंटा यदि एकाग्रता होवे तो बहुत प्राप्ति हो जाती है।

जीवादि ये सात तत्त्व - जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बंध और मोक्ष - ये सात तत्त्व **बाह्यतत्त्व हेय हैं;** उसका विस्तार अभी नीचे आएगा। **हेय हैं** यानि लक्ष करने योग्य नहीं है, यानि उपादेय नहीं हैं; हेय का अर्थ द्वेषवाचक नहीं है; हेय का अर्थ उपेक्षावाचक है। ये परिणाम तो नाशवान है वो मैं नहीं हूँ, मैं तो अविनाशी हूँ। ये सातों तत्त्व हैं नाशवान, क्षणिक, कर्म-सापेक्ष हैं; मैं तो अनादि-अनंत, नित्य ध्रुव परमात्मा हूँ।

यह **हेय हैं** और **कर्मोपाधिजनित** देखो! कर्म की उपाधि से, संयोग से जनित **गुणपर्यायोंसे** यह गुणों की जो अवस्था होती है पर्याय, उससे **व्यतिरिक्त** यानि रहित आत्मा हूँ। ये (जो) आत्मा है यह

पर्याय मात्र से रहित है - ऐसा **आत्मा, आत्माको उपादेय है। आत्मा** यानि त्रिकाली द्रव्य, **आत्माको** यानि साधक को, वो आत्मा **उपादेय है**। साधक को भी वो ही आत्मा उपादेय है और साधक जिसको बनना हो उसको भी वही आत्मा उपादेय है। मुनिराज को आत्मा उपादेय है, सम्यग्दृष्टि को भी यही आत्मा उपादेय है और जिसको सम्यग्दर्शन प्रगट करना हो उसको भी वो ही आत्मा उपादेय तत्त्व है।

टीका: यह, हेय और उपादेय, **हेय** यानि त्याज्य - छोड़ने योग्य; **उपादेय** यानि ग्राह्य - ग्रहण करने योग्य। दृष्टि में शुद्धात्मा ग्रहण करने योग्य है; और दृष्टि में परिणाम हेय है, त्याज्य है, छोड़ने योग्य है, लक्ष छोड़ने योग्य है; लक्ष करने की चीज नहीं है क्योंकि अनात्मा है, आत्मा नहीं है, परद्रव्य है। **यह, हेय और उपादेय तत्त्वके स्वरूपका कथन है**, टीकाकार टीका करते हैं। मूल कुंदकुंद भगवान की गाथा है, उसके बाद अमृतचंद्र आचार्य के पीछे आज से ८०० वर्ष पहले एक (मुनिराज) पद्मप्रभमलधारी देव हो गये हैं। बालब्रह्मचारी थे और **भावी** तीर्थंकर होनेवाले हैं (नियमसार कलश २१२)। ऐसे समर्थ (मुनिराज), उन्होंने टीका की है। टीका यानि विस्तार। जीवतत्त्व, अभी आगे एक-एक (तत्त्व) का भी अभी विचार-विश्लेषण चलेगा।

जीवादि सात तत्त्वों पहले जीव शब्द है। दूसरा शब्द अजीव। अजीव के बाद आता है आस्रव, आस्रव के बाद आता है संवर, संवर के बाद आता है निर्जरा, निर्जरा के बाद आता है बंध, बंध के बाद आता है मोक्षतत्त्व। वो जो सात हैं न, वो सातों ही पर्याय हैं। जीव की पर्याय है, जीव द्रव्य नहीं लेना। **जीव** यानि जो दस प्रकार के प्राण से जीव जीता है - व्यवहार जीव, उसका नाम जीव है। आहाहा! शान्त (मुमुक्षु का नाम) ऐसे-ऐसे (सिर ऊपर-नीचे) करता है शान्त, अर्थात् पढ़ा तो है, इनका लड़का।

जीव है न वो पर्याय है, तो वो दस प्रकार के प्राण से जीता है, संज्ञी पंचेंद्रिय। तो पाँच इंद्रियों का उघाड़, पाँच इन्द्रिय का ज्ञान का उघाड़ जानने का होता है न, तो ये पाँच इंद्रियाँ हैं उसके पास, वो व्यवहार प्राण है, व्यवहार जीव है, निश्चय जीव नहीं है, क्योंकि वो तो नाश होनेवाला है। सिद्ध पर्याय प्रकट होगी तो ये प्राण-फ्राण नहीं होते हैं। मनबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छवास और आयु - ये जो परिणाम है, वो जीव - व्यवहार जीव है, निश्चय जीव नहीं है। तो व्यवहार जीव हेय है और निश्चय जीव उपादेय है। उस परिणाम से भिन्न, अनंत गुणात्मक भगवान आत्मा वह मेरे लिए उपादेय है। जीव से जीव का भेदज्ञान करना। जीव से जीव भिन्न है।

जीव से पुण्य-पाप तो भिन्न हैं ही। क्या कहा? जीव से पुण्य-पाप तो भिन्न हैं ही, तीनों काल, मगर जीव से जीव भी भिन्न है। तो क्या दो जीव हैं? जीव तो एक ही है मगर जीव का निरुपण दो प्रकार से किया जाता है - एक जीव का स्वरूप निश्चयनय से निरुपण से किया जाता है; उस ही जीव के स्वरूप का निरुपण व्यवहारनय से किया जाता है। तो जो व्यवहारनय से निरुपण करनेवाली व्यवहारनय है, वह व्यवहारनय उसको जीव कहता है - दस प्रकार के प्राण, क्षयोपशम - ज्ञान का उघाड़, आयुष्य आदि। तो ये जो-जो जीव है, व्यवहारनय जिसको जीव कहता है, वो अभूतार्थ है। **व्यवहारनय** का **जो निरुपण** है, वो सब **असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना** (मोक्षमार्ग प्रकाशक पेज २५०)।

ये शान्त का लड़का कल आया था मेरे पास, छोटा, लगभग छह-सात वर्ष का आठ वर्ष का

होगा। उसने वो वाक्य बोला, मैं तो खुश हो गया। आहाहा! कि **व्यवहारनय से** जितना **निरुपण** शास्त्र में आये **उसे असत्यार्थ** जानकर **उसका श्रद्धान छोड़** देना (मोक्षमार्ग प्रकाशक पेज न. २५०)। अर्थात् जो ये व्यवहार जीव का निरुपण आवे, व्यवहारनय (उसको) जीव कहता है। जीव नहीं है और जीव कहे, है अजीव और जीव कहे, है परद्रव्य और जीव कहे; है विभाव और उसको जीव कहे। ख्याल में आया?

यह गाथा भैया ऊँची है, ऐसे ही पढ़ लेने की गाथा नहीं है, घोलन करने की गाथा है। आहाहा!

मुमुक्षु: यह अधिकार लेकर आपने परम कृपा की है।

पू. लालचंदभाई: हम तो हमारा घोलन करने के लिए आए हैं। आहाहा!

मुमुक्षु: गुरुदेवश्री के मुखारविंद से बहुत बार सुना है कि नियमसार लालचंदभाई का बहुत प्रिय ग्रंथ है।

पू. लालचंदभाई: यह तो गुरुदेव कहते थे, गुरुदेव की कृपादृष्टि थी। सभा में कहें कि नियमसार बहुत प्रिय है लालचंदभाई को। आहाहा!

क्या कहा? जीव है, तो जीव का दो प्रकार से निरुपण है। जीव तो एक ही प्रकार का है, जीव दो प्रकार का नहीं होता है। मगर जीव के साथ जिस भाव का संयोग होता है, जिसका वियोग होनेवाला है, अरे! (जो) वियोग स्वरूप ही है, वियोग होनेवाला है और अभी भी वियोग स्वरूप ही है। संयोग होने पर भी वो वियोग स्वरूप ही है वर्तमान में आहाहा! ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है।

ऐसे जो इंद्रिय प्राण है वो उसको व्यवहारनय जीव कहता है। है अजीव, है परभाव, है परद्रव्य, है क्षणिक, है कर्मकृत, है पर्यायार्थिक का पारिणामिक, वह नाशवान है; वह सचमुच जीव है नहीं। उसको जीव मानना, इंद्रियज्ञान को ज्ञान मानना वो अज्ञान है। इंद्रियज्ञान को ज्ञान मानना अज्ञान है; और इंद्रियज्ञान को जीव का परिणाम मानना वो मिथ्यात्व है। आहाहा! यह जीव तो परिणाम बिना की चीज है, जीव को परिणाम होता ही नहीं है। आहाहा! ऐसा जो व्यवहारनय के निरुपण - कथन आया कि ये जो दसप्रकार के प्राण से जीता है उसका नाम जीव - वो व्यवहार जीव है।

जीव का निरुपण दो प्रकार का है। जैसे मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का है, मोक्षमार्ग का निरुपण दो प्रकार का है। है तो निश्चय मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का। आत्मा के आश्रय से **सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः** (तत्त्वार्थ सूत्र प्रथम अध्याय सूत्र १) - जो वीतरागी पर्याय, जिसमें आनंद आता है वह मोक्षमार्ग है, मगर उसके साथ व्यवहार रत्नत्रय का संयोग संबंध है। तो व्यवहार मोक्षमार्ग -है बंधमार्ग, है बंधमार्ग, वो निकल जानेवाला है और अभी भी उसमें है ही नहीं; तो भी संयोग देखकर उसको मोक्षमार्ग कहा जाता है, कथनमात्र है। है बंधमार्ग, कहा जाता है मोक्षमार्ग; तो व्यवहारनय के सब कथन असत्यार्थ कथन समझना। आहाहा!

ऐसे मोक्षमार्ग एक ही प्रकार का होने पर भी निश्चय रत्नत्रय और व्यवहार रत्नत्रय ऐसे दो प्रकार की मोक्षमार्ग की कथन पद्धति चलती है। ऐसे जीव एक ही प्रकार का है - ज्ञायकभाव वो जीव है। ज्ञायकभाव ही जीव है; दस प्रकार के प्राण जीव नहीं है मगर अजीव हैं। जीव नहीं मगर अजीव है। अजीव को जीव मानना वो मिथ्यात्व है। अजीव को जीव मानना मिथ्यात्व है। पुण्य-पाप को जीव

मानना तो मिथ्यात्व है, मगर शास्त्र ज्ञान जो है ज्ञेय, है अजीव, है परभाव, है परद्रव्य - हेय है; फिर भी उसको, शास्त्रज्ञान को उपादेय मान ले वो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! ज्ञेय है, ज्ञान तो नहीं है उसमें। आहाहा! इंद्रियज्ञान आत्मा को प्रसिद्ध नहीं करता है (बल्कि) पर को प्रसिद्ध करता है तो ज्ञेय है, ज्ञान नहीं है।

इसलिए जीव से जीव का भेदज्ञान। पहले बोल की बात है, एक बोल की अभी। छह बोल तो बाकी हैं। एक बोल की बात चलती है कि जीव से जीव का भेदज्ञान करो। आहाहा! जीव यानि शुद्धात्मा जो ज्ञान-दर्शन से जीता है, चेतना प्राण से अनादि-अनंत जीता है। उसको आयुष्य कर्म की ज़रूरत नहीं है। आयुष्य कर्म से जीये वो अजीव है, जीव नहीं है। आहाहा! आयुष्यमान नहीं है। आहाहा! 'आयुष्यमानभवः' ऐसा आत्मा नहीं है आहाहा! वो तो सब व्यवहार का, अभूतार्थनय का कथन चलता है। आहाहा!

अरे! जीवतत्त्व की बात उसको अनुभव में तो आयी नहीं मगर उसे सुनने भी मिले नहीं (ऐसे) भाग्य फूट गए। आहाहा! जहाँ देखो वहाँ व्यवहार की बातें, व्यवहार की बातें, ऐसा करो तो धर्म होवे और ऐसे करो तो धर्म हो आहाहा! परंतु इसको (आत्मा को) जाने तो धर्म हो - यह तो एक सोनगढ़ के संत पके (अवतरित हुए) उन्होंने यह मार्ग बताया। आहाहा!

तो ये जो जीव है दस प्रकार के प्राणवाला, वह सात तत्त्व में पहला तत्त्व, पर्यायतत्त्व - जीवतत्त्व, द्रव्यतत्त्व नहीं है। नाम जीव है मगर (वो) व्यवहारजीव है, व्यवहार जीव होने से पर्याय तत्त्व है, वो व्यवहारनय का विषय है। पर्याय व्यवहारनय का विषय है, निश्चयनय का विषय नहीं है। उसे जीव मानना वो मान्यता छोड़ दे कि वह जीव सच्चा नहीं है, वह तो बनावटी - स्वाँग है। दस प्रकार के प्राण आहाहा! अभी वियोग स्वभावी हैं और अल्पकाल में वियोग होनेवाला ही है। सिद्ध पर्याय सबकी प्रगट होनेवाली है। ऐसा नहीं होगा कि ये सिद्ध होगा और मैं रह जाऊँगा। नहीं! आहाहा! परीक्षा में पास करे तो मैं पहले नम्बर आऊँगा। मेरा पहला नम्बर आएगा ऐसा लेना चाहिए। आहाहा!

पर्याय का स्वभाव, ज़्यादा काल बंध (रूप) रहने का स्वभाव ही नहीं है पर्याय का। वो तो विभाव है, बंध तो; और मोक्ष होने का ही पर्याय का स्वभाव है। द्रव्य तो त्रिकाली मुक्त है मगर पर्याय का स्वभाव भी लंबे time (समय) बंध (रूप) रहनेवाला नहीं है। थोड़ा ज्ञान को फैलाकर देखो तो मोक्ष दिखाई देता है। आहाहा!

एक बार मैं सोनगढ़ में था और प्रेमचंद जी वहाँ आए, दिल्ली से। मैं राजकोट जानेवाला था। तो बस का time थोड़ा late (देर से) हो गया तो पास में bench (ओटले) पर बैठे। मैंने प्रेमचंद जी से कहा कि, 'प्रेमचंद जी साहेब! कि पानी, जल गरम हो गया, गरम होने पर भी कितने time गरम रहता है? थोड़े time गरम रहता है। बाद में तो अपने आप ठंडा हो जाता है कि नहीं?' है न? तो पर्याय का काल भी, संसार का काल भी limited (सीमित) है। संसार पर्याय अनादि-अनंत नहीं है। एक अपेक्षा से सादि-सांत, एक अपेक्षा से अनादि-सांत परंतु अनादि-अनंत है ही नहीं। आहाहा! समयवर्ती देखो तो सादि-सांत एक समय की पर्याय प्रगट हुई मिथ्यात्व की (और) दूसरे समय (वह) व्यय हो गई, और ऐसे फैलाकर देखो तो अनादि से मिथ्यात्व चलता भले आए परंतु उसका अभाव ही होनेवाला है। मिथ्यात्व

ज़्यादा time नहीं रहता। बुख़ार कितने दिन रहे? एक दिन, दो दिन, तीन दिन, चार दिन, छूट जाता है बुख़ार। आहाहा! ऐसे पर्यायों में दोष हो तो दोष को मत देखो, दोष को आगे मत कर; निर्दोष परमात्मा को देख ले न, और फिर पर्याय को देख तो पर्याय भी निर्दोष हो जाएगी! आहाहा! द्रव्य के आलम्बन बिना पर्याय निर्दोष हो सकती नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु: प्रथम, यही मंगल-वाणी आपकी प्रथम में प्रथम सुनी थी।

पू. लालचंदभाई: प्रेमचंदजी को कहा कि 'पानी भले गरम हुआ प्रेमचंदजी परंतु लम्बे time पर्याय गरम रहती नहीं, अपने आप ठंडी हो जायेगी। उसके लिए पंखे की ज़रूरत नहीं है, क्योंकि पर्याय का स्वभाव भी विभाव रहने का नहीं है। ख्याल आया कुछ? सूक्ष्म बात है! पर्याय का स्वभाव भी विभाव (रूप) लंबे time नहीं रहती है पर्याय। विभाव का व्यय होकर पर्याय भी स्वभावरूप प्रगट हो जाती है। आहाहा!

अभव्य की बात अलग है। कोई अभव्य हो तो उसकी बात अलग है। वो समवशरण में आता ही नहीं है अभव्य जीव तो। आहाहा! गुरुदेव के समवशरण में कोई अभव्य नहीं आते थे, सब भव्य ही आते थे। आहाहा!

जीव, पहले जीव की व्याख्या है। सच्चा जीव और खोटा जीव, सच्चा जीव और एक झूठा जीव। जीव तो एक ही प्रकार का (है), सच्चा वही जीव है। समझे? वर और सरवाला, वर तो एक ही है। वरमाला तो लड़की वर के गले में ही डालेगी न, सरवाला के गले में (तो) नहीं डालेगी। आहाहा! वर और सरवाला; अण यानि नहीं - (जो) वर नहीं। वैसे (ही) ये जीव और अजीव (यानि कि) जीव नहीं। आहाहा! अजीव के खाते में डाल दे, जीव मत मान। जीव मानेगा तो अज्ञान और मिथ्यात्व का दोष आएगा। आहाहा! अजीव को जीव मत मान भैया, व्यवहार जीव है, निश्चय जीव (नहीं), वास्तव में वो जीव नहीं है, वो तो स्वाँग है। अल्पकाल में सिद्ध पर्याय होगी तो वो दस प्रकार के प्राण का अभाव हो जानेवाला है और अभी भी अभाव स्वभावमय ही रहती है, वो पर्याय स्वभावरूप होती नहीं है। आहाहा! चेतनाप्राण से जीव जीता है, दस प्रकार के प्राण से जीता नहीं है, यह जीव से जीव का भेदज्ञान हुआ।

अभी दूसरा शब्द अजीव; जीव से अजीव भिन्न है और अजीव से जीव भिन्न है। पहले जीव से जीव भिन्न बताया, अभी जीव के बाद अजीव तत्त्व आता है। सात तत्त्व है कि नहीं? उसका क्रम बताया था न? जीव के बाद अजीव। तो जीव में अजीव की नास्ति है। जीव में अजीव की नास्ति है और अजीव की तो प्रगटपने नास्ति है; जो कर्म है, पुद्गल है वो अजीव है, यानि छह द्रव्य इस जीव की अपेक्षा से अजीव है, उसकी तो उसमें नास्ति ही है। उस जीव में अजीव आता नहीं है। जीव और अजीव दो मिलकर एक जीव बनता नहीं है। क्या कहा? जीव और अजीव दो मिलकर एक जीव बनता नहीं है। अभी सूक्ष्म दूसरा भाव कि ये अजीव है ऐसा जो विकल्प आता है वो अजीव है। वो (परद्रव्य) निमित्तरूप अजीव है और (विकल्प) नैमित्तिकरूप अजीव है; मगर है अजीव, जीव नहीं है।

फिर से। आहाहा! एक जीव है और जीव के परिणाम में जो निमित्त होता है उसका नाम अजीव कहा जाता है, कर्म के उदय को। वो अजीव तत्त्व है, जीव उसमें नहीं है। वो तो जड़ है, pure (शुद्ध)

जड़ है। समझे? क्योंकि उसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण है और वो तो अजीव है; उपादान में निमित्त का तो अभाव है। उपादान में निमित्त का तो अभाव है। वो तो नक्की है न? निमित्त आता है उपादान में? नहीं आता। नास्ति है न, मेरे में नहीं है। समझे? तो अजीव को जीव नहीं मानना। निमित्त को उपादान नहीं मानना। समझे?

अभी अंदर का दूसरा एक अजीव उत्पन्न होता है, अजीव। वो (परद्रव्य) निमित्तरूप अजीव है दूसरा नैमित्तिकरूप अजीव पैदा होता है। एक निमित्तरूप अजीव है, कर्म; और कर्म के लक्ष से ये अजीव है - ऐसा जो ज्ञान होता है उसका नाम नैमित्तिक अजीव तत्त्व है, मगर जीव नहीं है। यह (परद्रव्य) अजीव है, यह अजीव है - मैं नहीं हूँ, ये अजीव है, अजीव है; ऐसा जो विकल्प उत्पन्न होता है, उसका नाम नैमित्तिक अजीव तत्त्व है। निमित्तरूप अजीव तो जुदा है, पृथक है। आहाहा! उसका नाम अजीव तत्त्व है।

जीव से जीव जुदा और जीव से अजीव जुदा (है)। जीव से अजीव, दो प्रकार से जुदा है, एक (तो, ये) अजीव है - ऐसा (जो) विकल्प उत्पन्न होता है उसका नाम नैमित्तिक अजीवतत्त्व है और (दूसरा) जो उसका लक्ष करता है - कर्म का, उसका नाम निमित्त है वो भी अजीव है। निमित्त भी अजीव, नैमित्तिक भी अजीव - उससे जीव भिन्न है। आहाहा! मैं तो जाननहार हूँ, मैं तो ज्ञाता हूँ। आहाहा! अजीव तत्त्व की मेरे में नास्ति है। मेरे में अजीव तत्त्व नहीं है। तो मेरे में नहीं इसलिए मैं कर्ता-भोक्ता नहीं हूँ और मेरे में नहीं है इसलिए मैं उसको जानना अभी सर्वथा बंद कर देता हूँ और मेरे आत्मा को जानता हूँ। तो जीव और अजीव का भेदज्ञान करने से सम्यग्दर्शन की प्रगटता एक समय में हो जाती है। ऐसा अधिकार बढ़िया है। Time हो गया।

मुमुक्षु: नैमित्तिकभाव भी अजीव है?

पू. लालचंदभाई: अजीव है। उसका कर्ता नहीं, बिल्कुल कर्ता नहीं। आहाहा! नास्ति है। जो उसमें नहीं है उसको करे कैसे? जो जीव में नहीं है - विकल्प, उस विकल्प को कैसे करे? आहाहा! अरे! विकल्प को न करे तो संवर-निर्जरा आयेंगे, तब ज़्यादा खबर पड़ेगी कि इसका भी कर्ता नहीं (है)। आएगा, उसकी भी नास्ति है, आत्मा में।

बहुत सूक्ष्म अधिकार है। शांति से, आहाहा! अपने को ज़रा भी जल्दी नहीं है, शांति से एक-एक बोल और एक-एक शब्द का धीमे-धीमे-धीमे घोलन करना है। आहाहा! भेदज्ञान, भेदज्ञान है।

ॐ